ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

भारतीय परम्परा में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

डॉ. कुसुम विश्वकर्मा

अनुवादक, भारतीय रेलवे
छत्रपति शिवाजी महाराज टर्मिनस, मुंबई
vishwakarmakusum@ymail.com

सृष्टि की संरचना में स्त्री-पुरुष दो ध्रुवों के समान अटल है, जो सृष्टि के संचालन में सहायक होते हैं। स्त्री के बिना पुरुष, पुरुष के बिना स्त्री अपूर्ण है। पूर्णता के लिए दोनों एक-दूसरे पर आलम्बित है। कुछ ऐसा ही पूर्वजों द्वारा खोजा गया; शिव और शक्ति का सिद्धांत, ब्रम्ह की कल्पना 'पुरुष' है और 'शक्ति' की कल्पना स्त्री है। नई शब्दावली में कहें तो सृष्टि की दिव्यता स्त्री-पुरुष के बिना अर्थहीन हो जाती है।

देखा जाए तो स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अपने आप में बेहद पेचीदा और जटिलताओं से भरा हुआ है। यह शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक त्रिकोणों से गढ़ा गया एक जटिल तंत्र है। स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। नवजागरण, नवोन्मेष काल में स्त्री-पुरुष के प्रतिद्वंदी के रूप में नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक के रूप में हैं। दोनों में ही अलग-अलग विशेषताएँ विद्यमान है। पुरुष जहाँ शारीरिक दृष्टि से शक्तिशाली है, वहीँ स्त्री आत्मसंयम, धैर्य, त्याग जैसे उद्दात गुणों से परिपूर्ण है। इसलिए स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज के महत्त्व पूर्ण घटक माने जाते है। उनके पारस्परिक सहयोग पर ही समाज प्रगति के पथ पर अग्रसित हो सकता है। स्त्री-पुरुष संबंधों को स्पष्ट करने के लिए हमें दोनों की प्रकृति, रूपों तथा अर्थों को समझना होगा तभी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध स्पष्ट हो सकेंगे। आगे इन सम्बन्धों को विवेचित किया गया है।

स्त्री : शब्द का अर्थ –

'स्त्री' शब्द का शाब्दिक अर्थ विद्वानों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में दिया है। नारी के विषय में कुछ प्रमुख धार्मिक ग्रन्थों, वेदों व प्रसिद्ध विचारकों के मत निम्न प्रकार है –

"हिंदी शब्द सागर में 'स्त्री' के; औरत, महिला, जोरू, पत्नी आदि विभिन्न नाम है।"[1]

'बाइबिल' ने नारी उत्पत्ति की कथा निम्न प्रकार है–"परमेश्वर ने उसे पसुली कहा है जो आदमी में से निकली थी।स्त्री बना दिया है।" और आदम स्त्री के विषय में स्पष्ट कहते है कि अब यह मेरी हड्डियों में

की हड्डी और मेरे मांस का मांस है। इसलिए इसका नाम नारी होगा, क्योंकि यह नर में से निकाली गयी है।"[2]

'ऋग्वेद' में नारी को मैना नाम से सम्बोधित किया गया है, क्योंकि इसे पुरुष सम्मान देते है। पुरुष इसके पास जाते है अतः ये 'म्ना' कहलाती है। डॉ. गजानन शर्मा – नर के धर्मवाली नर से सम्बन्ध होने के कारण उसका 'नारी' नाम पड़ा है।

ईश्वर ने सृष्टि के सफल संचालन के लिए नारी की उत्पत्ति की, नारी शब्द से सृष्टि के एक-एक प्राणी विशेष का रूप हमारे समक्ष आता है। नारी के बिना पुरुष अपूर्ण है। स्त्री- कन्या, पत्नी, भगिनी, माता आदि हर रूप में पुरुष के सहयोग, प्रेम, स्नेह व आदर की अधिकारिणी है। नारी, पुरुष का आधा अंग मानी जाती है। यह भाव अर्धांगिनी शब्द से भली-भांति स्पष्ट हो जाता है। आज भी स्त्री-पुरुष समान रूप से घर के स्वामी माने जाते है। दोनों के सहयोग, सामंजस्य और विश्वास से ही घर का सफल संचालन होता है और घर राष्ट्र के निर्माण की छोटी किन्तु एक महत्वपूर्ण इकाई है।

प्राचीन काल के भारतीय साहित्य में नर-नारी उत्पत्ति की कथा से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि स्त्री-पुरुष एकाकार है। इसलिए स्त्री को शक्ति के रूप में पूजा गया है। 'शक्ति' के अभाव में कोई भी पुरुष अपने पुरुषार्थ के सफल परिणाम तक पहुँचने अक्षम होता है। इस प्रकार हम कह सकते है की दोनों ही एक-दूसरे पर अवलंबित है। दोनों के सहयोग से ही सृष्टि का अस्तित्व वर्तमान है।

समाज में नारी का योगदान :

भारतीय वांग्मय में नारी के योगदान व उसके दर्जे को विविध परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। नारी को सामाजिक स्थान आर्यों और अनार्य जातियों के संघर्ष काल से मिलना प्रारम्भ हुआ है। संसार के इतिहास में काल-परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति में भी परिवर्तन होता रहा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक नारी शक्तिशाली देवी, माँ, पत्नी, बहन, और प्रेमिका के रूप में चित्रित की जाती रही है।

वैदिक साहित्य में नारी की छवि देवी रूप में चित्रित की गयी है। उस काल के साहित्य में भी पुरुष की अपेक्षा नारी का सम्मान अधिक था। इसलिए भारतीय नारी को अनेक नामों से अभिहीत किया जाता है; माया, प्रकृति, अन्ना, ईच्छा, धी, श्री, आदि। वैदिक काल में नारी का स्थान श्रेष्ठ तथा उसकी दशा

सुदृण थी। नारी को अनेक अधिकार प्राप्त थे। प्राचीन काल में नारी का यह युग भारतीय संस्कृति का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है।

आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन के साथ-साथ नवीन क्रांति का उदय हुआ। जिसके कारण नारी जीवन में एक नया परिवर्तन आया। अनेक समाज-सुधारकों ने भारतीय नारी को स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा दी। उन्होंने पुरुष को नारी की श्रेष्ठता से अवगत कराया कि जब तक देश की आधी जनसँख्या अशिक्षित, निष्क्रिय व पराधीन रहेगी तब तक भारत आजाद नहीं हो सकेगा।

आजादी मिलने पर नारी के सामाजिक व पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन हुआ। नारी को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता, व्यक्तित्व, विकास, समान अधिकार के अवसर दिए जाने का आश्वासन दिया जाने लगा। भारतीय नारी के लिए संविधान में समानता की घोषणा एक उपलब्धि है।

पुरुष'- शाब्दिक अर्थ :

भारतीय साहित्य में पुरुष को 'निर्माता' के रूप में व्याख्यायित किया गया है। सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर आज तक पितृसतात्मक परिवार व नर महिमा का वर्णन मिलता है। वेद ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति में सर्वप्रथम पुरुष का जन्म हुआ था।

अर्थ विस्तार की दृष्टि से पुरुष शब्द का व्यापक अर्थ में वर्णन मिलता है। मर्द अथवा नर, सूर्य, विष्णु, शिव, जीव, विप्रराशि, मेरु, पर्वत, आदि इसके अनेक अर्थ हैं।

हिंदी शब्दसागर में पुरुष – मनुष्य, आदमी, नर, संख्य के अनुसार प्रकृति से भिन्न-भिन्न अपरिणामी, अकर्ता, और असंग्वेतन पदार्थ, आत्मा। इसी के सानिध्य से प्रकृति संसार की सृष्टि करती है।

बाइबिल में पुरुष की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कहा गया है –"आदमी अथवा आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं। मैं उसके लिए एक सहायक बनाऊंगा जो उससे मेल खाए।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में आदम अकेला था। इस प्रकार पुरुष सृष्टि का महत्वपूरण तत्व है, जिसके सानिध्य में प्रकृति विश्व की सृष्टि करती है। प्राचीन साहित्य में सृष्टि के पालनहार भगवान की कल्पना पुरुष रूप में की गई है। "पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति है 'पुरति', 'अग्रे म्च्छ्रती' (जो सबसे आगे जाता या रहता है) 'पुर' धातु में 'उषादि' प्रकरण के पुर कुषन सूत्र से यह सिद्ध हुआ है। कुषन में 'क' और 'न' उनके लोप से 'उष' शेष रह गया। इस प्रकार पुर+उष = से 'पुरुष' शब्द बना।"[4]

इस प्रकार 'पुरुष' शब्द की व्युत्पत्ति के अर्थ से सिद्ध होता है कि पुरुष सबसे श्रेष्ठ, आगे रहने वाला, बलशाली, शक्तिशाली का सूचक है। प्रकृति व पुरुष का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अस्तु भारतीय साहित्य में पुरुष को समाज का विधाता चित्रित किया गया है। सृष्टि के पालनहार भगवान की कल्पना भी 'पुरुष'रूप में की गयी है। इसी कारण घट, समाज, में पुरुष को ही सम्पूर्ण अधिकार दिए गए है।

समाज में पुरुष का योगदान :

भारतीय संस्कृति के पारिवारिक परिवेश में नर का उद्दात्त रूप सर्वत्र सम्माननीय तथा पूज्य रहा है। आदिकालीन साहित्य में पुरुष को पराक्रमी, योद्धा, बलिदानी, साहसी, उत्साही और प्रेरणादायक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। भारतीय संस्कृति में पुरुष को अधिकांशतः संरक्षक, विधाता, संहिता के निर्माता के रूप में चित्रित किया गया है।

मानव जाति में पुरुष का पृथक अस्तित्व एक महत्वपूर्ण तथ्य है। वह अपने आपकों पूर्ण मानव के रूप में ही परिभाषित करता है। पुरुष शक्ति सम्पन्न होता है, उसकी पूरी कोशिश होती है की घर और समाज को स्वर्ग की गरिमा में बदलने की। पुरुष स्वभाव से ही संघर्षशील होते है। वह अपने शारीरिक व मानसिक शक्ति के बल पर ही सब कुछ हासिल करना चाहते है। पुरुष अपनी शक्ति के बल पर स्वतंत्र समाज का निर्माण नहीं करता है बल्कि वह ऐसे समाज का मिर्माण करना चाहताहै जो पुरुषों द्वारा शासित हो। पुरुष नाना रूपों में नारी के समक्ष आता रहा है। पिता के रूप में, पति के रूप में, एवं ईर्ष्यालु प्रेमी के रूप में, नारी को मोहित करने वाला रूप भी उसका है। वह सपूत और कपूत दोनों ही रूपों में आता है। इस प्रकार पुरुष कभी पिता, कभी पति, कभी प्रेमी, कभी सखा बनकर अपने मोहक रूपों से स्त्री को आकर्षित करता रहा है और नारी भी उसके विभिन्न रूपों से अभिभूत हो कर उसके सामने नतमस्तक होती रही है।

वैदिक साहित्य में पिता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया था। पितृसत्तात्मक समाज में पिता को ही घर के सदस्यों के पालन-पोषण का भार वहन करना पड़ता था। परिवार में पिता की स्थिति इतनी ऊँची थी कि उसे 'पितृ देवों भवः' की उपमा दी जाती थी। वेदकालीन पितृप्रधान समाज में पुत्र, पुत्री, पत्नी, तथा पुत्रवधू सब गृहपति की छत्रछाया में रहते थे। मुखिया होने के कारण ही पिता का सम्पत्ति पर भी एकाधिकार माना जाता था। इस तरह घर के पुरुष सदस्य को घर की सम्पत्ति व मान-मर्यादा का संरक्षक माना जाता था। पिता को भगवान की तरह ही पूजा जाता था।

मध्ययुग में पुरुष ने मानसिक और शारीरिक शक्तियों के बल पर समाज में एकाधिकार स्थापित लिया। पुरुष ने अपने एकाधिकारों का भरपूर प्रयोग किया। स्त्री पुरुष के लिए थी वह उसकी भोग्य वस्तु थी, विनोद की सामग्री मात्र थी, वह पुरुष की नजर में पशु-तुल्य, पराधीन थी। इस प्रकार पुरुष समाज में कर्णधार और न्यायकर्ता के रूप मुखर हुआ। समाज और परिवार सम्बन्धी सभी अधिकार उसने अपने हाथों में ले लिया।

संसार नित परिवर्तनशील है। नवीन युग ने करवट बदली और इसके साथ ही नई विचारधाराओं ने जन्म लिया। पुरुष, समाज में अपनी शक्तियों के बल पर सबकुछ अर्जित करता चला गया। पुरुष का यह मानना कि समाज का प्रादुर्भाव पुरुष के मूल से ही हुआ है यह सत्य नहीं है। वह समाज की महत्वपूर्ण इकाई नारी को नकार नहीं सकता। समाज के विकास में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका है जिसे किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता। समाज में स्त्री और पुरुष दोनों की स्थिति एक-दूसरे को प्रभावित करती है।

युगीन परिवर्तन के बाद भी पुरुष सत्ता अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग अपने समान दूसरी शक्ति पर करता चला आया है और नारी उस शक्ति के आगे विवश पाती है। स्त्री सम्पूर्ण रूप से पुरुष जाति पर निर्भर थी। शारीरिक व आर्थिक रूप से बलशाली पुरुष अपनी शक्तियों के बल पर नारी के अधिकारों पर कब्ज़ा करता रहा। पुरुष की इन्ही शक्तियों का भय नारी मानती रही और उसकी इसी दुर्बलता का दंड उसे मिलता रहा।

अस्तु, वर्तमान युग में नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मांग के प्रति सचेत होने लगी। जिससे पुरुष का सिंहासन हिल उठा है। इतिहास साक्षी रहा है कि काल परिवर्तन के साथ ही लोगों के विचारों में भी परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक काल में पुरुष स्त्री को अपनी सेविका के रूप में नहीं बल्कि सहायिका के रूप में देखने लगा। स्त्री घर की प्रधान संचालिका, माँ, बेटी, बहन, पत्नी के साथ-साथ पुरुष की सहयोगिनी के रूप में स्वीकारी जाने लगी।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध:

नर-नारी सृष्टि के अंग है और इनका सृष्टि से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। स्त्री और पुरुष के बिना सृष्टि का अस्तित्व संभव नहीं है। उसके योगदान से ही सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ है। यदि इसकी गहराई में जाए तो ये इसके विस्तार का ज्ञान होगा। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में ही समाज में अनेक

सम्बन्ध पाए जाते है जैसे माँ-पुत्र का सम्बन्ध, भाई-बहन का सम्बन्ध, पिता-पुत्री का सम्बन्ध, पति-पत्नी का सम्बन्ध आदि अन्य सम्बन्धों से घनिष्ठ एवं स्थायी सम्बन्ध माना गया है।

प्राचीन साहित्य में स्त्री-पुरुष को रथ के दो पहियों की उपमा दी गई थी। कहा गया है कि दो पहियों के समान रूप से चलने से ही संसार-रूपी रथ सरलता से चल सकता है। समय सदा परिवर्तनशील होता है तथा इसके प्रभाव से सामाजिक सम्बन्ध भी अछूते नहीं रहें। इसी कारण विभिन्न युगों में इन सम्बन्धों के आदर्श, मायने, अस्तित्व परिवर्तित होते रहें है। नए युग के साथ सम्बन्धों की नवीन विचारधारा भी जन्म लेती हुई आगे बढ़ी। नए मानवीय मूल्य स्थापित होते है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर विहंगम दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि मानव-मन के भावों में जटिलता और वैविध्य पाया जाता है। मानव इतिहास पर दृष्टिपात करने पर उसमे विलक्षण उत्थान-पतन सदा से होता रहा है। स्त्री तथा पुरुष सृष्टि के दो वर्ग हैं। सृष्टि की सम्पूर्ण रिक्तता की पूर्ति नारी-पुरुष के सम्बन्धों से मानी गई है। नारी में उर्वरा शक्ति निहीत होती है। उसका शांत स्वभाव एक महत्वपूर्ण गुण है। स्त्री पृथ्वी रूपा है तो पुरुष बीज रूपा, नारी जल है और पुरुष अग्नि हैं। अग्नि और जल के संयोग से ही सृष्टि का संचालन संभव होता है। स्त्री-पुरुष में परस्पर जीव वैज्ञानिक विविधता होते हुए भी मानसिक, आत्मिक रूप से एक-दूसरे के पूरक हैं। वे मानसिक और आत्मिक तौर पर अलग होते हुए भी एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध – अर्थ :

प्रारम्भ में स्त्री-पुरुष के केवल स्वच्छंद सम्बन्ध थे। धीरे-धीरे सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल आपसी समझौते के द्वारा आपस में एकबद्ध हुए। विभिन्न परिस्थितियां और आवश्यकताओं के वशीभूत हो कर ये आपसी सामंजस्य के साथ विचरण करने लगे। फिर इनके झुण्ड बने, तत्पश्चात कबीलाई जीवन को जीते हुए इन्होंने सभ्यता की नई सीढ़िया चढ़ी। झुण्ड से कबीले बने और कबीलों से ही परिवार की प्रारम्भिक अवधारणा ने जन्म लिया। समय बीतता गया और मनुष्य और भी सभ्य होता गया। स्वयं को सम्पूर्ण जगत में श्रेष्ठ और सर्वोच्च प्रमाणित करने के लिए वह नए अविष्कार और खोजों को जन्म देता रहा।

भारतीय समाज में नारी-पुरुष का सम्बन्ध सृष्टि के साथ ही स्वयं उनके लिए भी एक आवश्यकता थी। इनके मिलन से परिवार बना और अनेक पारिवारिक रिश्तों का जन्म हुआ। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध न केवल पति-पत्नी बल्कि भाई-बहन, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, आदि अनेक आयमों से आगे बढ़ा

बल्कि जो भारतीय समाज की एक मजबूत कड़ी है; परिवार से समाज, समाज से देश का विकास आदि सम्भव हुआ। पवारिक सम्बन्ध भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

सन्दर्भ :

1. हिंदी शब्द सागर, संपा. श्यामसुन्दरदास, पृ. 2594 ।
2. धर्मशास्त्र बाइबिल, उत्पत्ति कथा, पृ. 4 ।
3. धर्मशास्त्र बाइबिल, उत्पत्ति कथा, पृ. 3 ।
4. हिंदी लेखिकाओं के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में पुरुष कल्पना, डॉ. उर्मिला प्रकाश, पृ. 109 ।